8

झारखंड में आदिवासी लड़कियों की शिक्षा

आशारानी व्होरा*

सामाजिक उत्थान के लिए सरकार द्वारा चलाए गए विभिन्न कार्यक्रमों में से एक कार्यक्रम आदिवासी बालिकाओं की शिक्षा से संबंधित कस्तूरबा गांधी विद्यालय भी है। परंतु सरकारी उदासीनता के कारण इस प्रकार के कार्यक्रम अपने उद्देश्यों से भटक जाते हैं। प्रस्तुत आलेख में झारखंड राज्य में उक्त कार्यक्रम की यथास्थिति को रेखांकित किया गया है ताकि सरकारी व्यवस्था संदवेदनशून्य न होकर इसकी स्वर्णिम सफलता की ओर अग्रसित हो सके।

आदिवासी लड़कियाँ अब पर्यटकों और छायाकारों के लिए मनोरंजन और प्रदर्शन की 'वस्तु' या 'परदेसियों' के लिए यौन तस्करों द्वारा उपलब्ध कराया जाने वाला सस्ता माँसल 'माल' न रह, जागरूक भारतीय नारियों के रूप में अपने नारीत्व के संरक्षण और मानवीय अधिकारों के प्रति सचेष्ट हैं। अच्छा लगता है, यह जानकर कि वे अब सामान्य और विशेष स्कूलों में शिक्षा ले रही हैं। सभ्यता से कटे हुए सुदूर क्षेत्रों की लड़कियों के लिए भी आवासीय स्कूल और छात्रावास हैं।

आदिवासियों को अलग-थलग करके सजावटी अजूबे के रूप में बनाए रखना और जनजातीय विकास तथा सामाजिक एकीकरण के नाम पर, उनकी सांस्कृतिक परंपराओं को नष्ट करना, ये दोनों विचारधाराएँ अतिवादी और अहितकर हैं। इसलिए जब पता चलता है कि झारखंड में आदिवासी लड़कियों की शिक्षा-दीक्षा को एक औसत समन्वित नीति के अनुसार चलाया जा रहा है, तो लेखकीय जिज्ञासा अधिकारियों के नीतिविषयक इस कथन की सत्यता को परखने के लिए प्रेरित करती है और मैं राँची से चालीस मील दूर लोहरदगा में स्थित कस्तूरबा छात्रावास (आदिवासी लड़कियों का हॉस्टल) में घूमकर प्रिंसिपल, अध्यापिकाओं, अधीक्षिका और छात्राओं से बातचीत करने लगती हूँ।

छात्रावास की जो शिक्षिका मेरे साथ थीं, उन्हें एक खबर मिलती है कि एक दिन पूर्व गुंडा-सा दिखने वाला एक युवक शराब के नशे में धुत्त होकर खिड़की की राह हॉस्टल में घुस आया था और लड़कियों ने मिलकर उसे घसीटते हुए गुसलखाने में बंद करके पकड़वा दिया था। इधर-उधर झुंड बनाकर घूम रही लड़कियों में उस दिन चर्चा का मुख्य विषय यही था। शिक्षिका को देखकर 'परनाम' करने के बाद लड़कियों ने उस घटना का ब्यौरा सुनाया था। भीतर जाने पर शायद इसी घटना की जाँच के

*त्रैमासिक पत्रिका 'नारी संवाद' (सितंबर, 2008) से साभार

लिए आए क्षेत्र के.बी.डी.ओ. तथा राँची के असिस्टेंट वेलफेयर ऑफिसर से भेंट हुई थी। उन्होंने बताया कि यहाँ बिरहोर, असुर, खड़िया, कुरबा जैसी पिछड़ी हुई जातियाँ हैं, जिनमें अब पर्याप्त जागृति आ रही हैं, परंतु अधिक उन्नति उरांव और देशभक्ति के लिए प्रसिद्ध गांधीवादी टानाभगत जातियों में ही हुई है। लड़कियाँ इंटीरियर गाँव से भी शिक्षा के लिए आ रही हैं। समस्या संस्थाओं की और उनमें अपेक्षित जगह और सुविधाओं की कमी की है, अन्यथा प्रवेश चाहने वाली लड़कियों की संख्या बहुत है। वे पूरी कोशिश करते हैं, उन्हें शिक्षा देने के साथ-साथ अपने घरों के खानपान और रीतिरिवाज़ के साथ जोड़े रखने की। एक दिन पूर्व की छात्रावास की उस घटना पर हमारे बीच कोई बातचीत नहीं हुई। मैंने जानबूझकर बात नहीं उठाई। चाहा, वे स्वयं बताएँ परंतु उन्होंने इस बारे में कुछ ज़ाहिर नहीं किया।

छात्रावास की उस पुरानी इमारत में जहाँ यह घटना घटी थी, चहारदीवारी थी, बड़ा-सा फाटक था और उसमें कम उम्र की मिडिल स्कूल की लड़कियाँ रहती थीं, जिनकी संख्या तीस थी। नये हॉस्टल में कुछ पक्के कमरे थे, परंतु न चहारदीवारी थी, न फाटक और न कोई चौकीदार! इसमें हाईस्कूल की बड़ी लड़कियाँ रहती थीं, जिनकी संख्या पचहत्तर थी। छात्रावास की अधीक्षिका रसोई व डाइनिंग हॉल के लिए बनी जगह में रहती थीं। इसलिए पूरे छात्रावास का खाना पुरानी इमारत में बनता था। अधीक्षिका के नाते उन्हें कुछ अतिरिक्त मानदेय भी मिलता था। यह राशि तब नाममात्र ही थी। शायद इसीलिए उनमें छात्रावास, लड़कियों की सुरक्षा और उनकी सुविधा के प्रति चिंता या ज़िम्मेदारी का अभाव था। उनसे हुई बातचीत का एक नमूना प्रस्तुत है:

''यह आम रास्ता है। कोई चहारदीवारी और चौकीदारी भी नहीं है। लड़कियों की रात में सुरक्षा का क्या प्रबंध है?''

''एक-एक लंबे कमरे में कई लड़कियाँ'' हैं। कोई खतरा नहीं है। मैं भी दस बजे के लगभग एक राउंड लेती हूँ।

''उसके बाद?''

''उसके बाद तो ये लोग प्राय: सो ही जाती हैं। कभी-कभी कुछ लड़कियाँ मिलकर सिनेमा देखने चली जाती हैं, तो वे भी दस बजे तक लौट आती हैं।'' ''लेकिन... बाहर से सुना गया है कि कुछ लड़कियाँ सुबह तक या देर रात तक बाहर ही रह जाती हैं और कुछ कमाकर लौटती हैं? ''नहीं, ऐसा नहीं है। मुझे तो इस बारे में कुछ सुनने में नहीं आया। कभी कुछ ऐसा हुआ हो, पर मुझे तो कुछ नहीं मालूम।''

''क्या आपने कभी चहारदीवारी या चौकीदार के प्रबंध के लिए अधिकारियों से कुछ लिखा-पढ़ी की है?'' ''जी नहीं।''

''अच्छा, लड़कियाँ खाली समय में क्या करती हैं? ''बस पढ़ती हैं। खाली समय उनके पास होता ही नहीं है कुछ सिलाई-बुनाई आदि भी करती रहती हैं।''

''स्कूल में कई पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं, जो स्कूल की स्थानीय लड़कियों को भी देखने को नही मिलतीं। क्या आपने कभी हॉस्टल की लड़कियों के लिए उनकी माँग नहीं की?''

''नहीं जी।''

''सुना है, कुछ लड़कियाँ छुट्टी में घर जाती हैं, तो महीनों नहीं लौटतीं?''

''जी हाँ! अधिकतर गरीबी के कारण ही वे घर बैठ जाती हैं। फिर अनाज या पैसा दे सकने की स्थिति में आने पर लौट आती हैं। उनकी इस मजबूरी को देखते हुए हाज़िरी की परवाह न करते हुए भी हम उन्हें ले लेते हैं।''

''तब रिज़ल्ट!''

''रिज़ल्ट ठीक ही होता है।''

बाहर से पता चला कि लड़कियों के फेल होने की संख्या अधिक न दिखाई दे, इसलिए पढ़ाई में कमज़ोर आधी संख्या को प्राइवेट छात्राओं के रूप में परीक्षा फॉर्म भरवाए जाते हैं और शेष को पास करवाने में भी सारी मीशनरी जुट जाती है। अनेक लड़कियों से बात करने पर मालूम हुआ कि वे कोर्स की किताबों के अलावा कुछ नहीं पढ़तीं। कभी किसी समर्थ लड़की के हाथ कोई फिल्मी पत्रिका या रोमानी किताब लग जाती है, तो वह सारी लड़कियों में घूमती है। हाईस्कूल की कुछ लड़कियों को प्रधानमंत्री का नाम भी नहीं मालूम था। अधिकतर उराँव लड़कियाँ थीं, जो समीप के गाँवों एवं कस्बों से आती थीं। पिछड़ी जातियों और सुदूर क्षेत्रों से आनेवाली संख्या नगण्य थी। खूँटी और चापाटोली की लड़कियों के आवासीय स्कूलों में सारा खर्च (कपड़े साबुन, तेल आदि मिलाकर प्रति छात्रा 52/80 प्रति मास तक) ही था। फिर भी अधिक संख्या टाना भगत लड़कियों की ही थी, जो वैसे भी सामान्य स्कूलों में पढ़ने में समर्थ हैं। फिर भी चापाटोली में 348 छात्राओं की जगह पर 220 ही थीं। खूँटी में केवल 88 छात्राएँ थीं। इसलिए बी.डी.ओ. की इस बात में कोई दम नहीं लगता था कि लड़कियों को प्रवेश की कठिनाई है। वास्तव में अपेक्षाकृत उन्नत आदिवासियों में भी लड़कियों को स्कूल तक लाने के लिए विशेष प्रयत्न करने पड़ते हैं।

हाँ, इच्छुक परिवारों की लड़कियाँ रुचि ले रही हैं। इसलिए दूर-दूर से पैदल चलकर भी आती हैं। छात्रावास से लगे स्कूल में कस्बाई छात्राओं की संख्या 425 थी। कुछ अन्य स्कूलों में और मिशन स्कूलों में भी पढ़ रही थीं। प्रधानाध्यापिका ने बताया कि अब दस प्रतिशत से अधिक लड़कियाँ पढ़ाई बीच में छोड़कर नहीं जातीं, यद्यपि 'आदिम जाति सेवा मंडल' से सरकार को हस्तांतरण के बाद गरीब लड़कियों को दी जाने वाली बहुत-सी सुविधाएँ समाप्त कर दी गई हैं। इमारत ही पिछले दस साल से 'रिपेयर' नहीं हुई। अनेक आदिवासी छात्राओं से अलग-अलग खुलकर बात हुई। लगभग सभी के मन में अपने परिवार की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए पढ़ाई के बाद नौकरी करने का सपना पल रहा था। कोई नर्स बनना चाहती थीं, तो कोई टीचर। इससे अधिक वे कुछ जानती ही न थीं और न ही उन्हें देश, समाज, आज के संसार का कुछ विशेष ज्ञान ही था। कुछ तो मोटी जानकारी से भी अनभिज्ञ थीं। कुछ लड़कियों ने शिकायत की, "क्रिश्चियन मिशन स्कूल अच्छे हैं। अपने धर्म की शिक्षा तो देते हैं, साथ-साथ पढ़ाई के बाद नर्स, टीचर आदि बनने में मदद भी करते हैं। यहाँ कौन पूछेगा?" परंतु छात्रावास की अधीक्षिका का कहना था,

"घरवाले पढ़ाई भी पूरी नहीं करने देंगे और शादी कर देंगे। इनका यह नौकरी का सपना मात्र गरीबी की प्रतिक्रिया है। इन्होंने पढ़-लिखकर भी न तो बहुत बदलना है, न अपनी आर्थिक स्थिति सुधारनी है।"

बी.डी.ओ. साहब से मैंने यह भी प्रश्न किया था कि इनके घरेलू या स्थानीय उद्योग धंधों, शिल्प एवं दस्तकारियों के विकास के लिए स्थानीय बाज़ार-हाट के अलावा क्या प्रयत्न किया गया है? तो उनका उत्तर था, "अभी तो इन क्षेत्रों में कोई ऐसा संगठित प्रयास नहीं हुआ।" छात्रावास में प्रति छात्रा खर्च कम लिया जाता था, परंतु अधिकांश लड़कियाँ बदले में चावल, दाल आदि एक निश्चित मात्रा में घरों से लाकर देती थीं। गाँव जोरी सहदा की एक लड़की की कहानी तो बहुत मार्मिक थी। वह रोज़ 6 मील से चलकर स्कूल आती थी। सुबह घर से भात खाकर आठ बजे चलती और शाम को घर पहुँचकर खाती। रोज़ बारह मील का सफ़र पैदल तय करनेवाली इस छात्रा के पास दिनभर के लिए न तो चंद पैसे होते थे, न घर से लाया खाना और उसकी आँख में सपना था, मैट्रिक के बाद टीचर्स ट्रेनिंग लेकर नौकरी करना और छोटे भाई-बहन को पढ़ाना। बड़ी बहन के साथ ससुराल में सुलूक ठीक नहीं था। गरीब माँ-बाप पर उसका भी बोझ था। इसलिए वह ऐसा बोझ बनना नहीं चाहती थी।

अत: देखना यह है कि गरीबीजन्य परंपरा की इस जकड़न से मुक्ति का प्रबंध सरकारी योजनाएँ करेंगी या पढ़-लिखकर ये लड़कियाँ स्वयं इस मुक्ति की राह प्रशस्त करेंगी?

❑❑❑